❀ श्री हरिः ❀

धर्म प्रश्नोत्तरी

लेखक—

श्री वेदान्ती जी

पियरी, बनारस।

प्रकाशक—

मुखिया भगत बालचन्द

बनारस।

प्रथम संस्करण] संवत् २००८ [मूल्य ।-)

निवेदन

"संशयात्मा विनश्यति"।

भगवान कृष्ण ने गीता में उपदेश किया है कि संशयात्मा पुरुष की अधोगति होती है क्योंकि आत्मविषयक संशय मोक्षप्रद ज्ञान की प्रतिबन्धक हैं। संशयात्मा कभी ईश्वर भक्त नहीं हो सकता इसीसे वह सच्चे सुख से वंचित रहता है।

अतः इस "धर्म प्रश्नोत्तरी" नामक छोटी सी पुस्तक में श्री वेदान्ती जी ने आवश्यक कुछ शंकाओं का बहुत सुन्दर समाधान किया है। आशा है साधकों को इस पुस्तक से अवश्य लाभ होगा।

निवेदक
कविराज हरिवंश सहाय
काशी।

श्रीगणेशाय नमः

धर्म प्रश्नोत्तरी

प्रश्न नं० १—मनुष्य शरीर देव दुर्लभ क्यों कहा गया है ?

उत्तर—जैसे दिन में ही सूर्य का दर्शन हो सकता है, रात्रि में करोड़ों यत्न करने पर भी सूय का दर्शन नहीं हो सकता है, उसी प्रकार केवल मनुष्य शरीर में ही सच्चिदानन्दघन परमपिता परमात्मा का साक्षात्कार हो सकता है क्योंकि मनुष्य शरीर में ही विज्ञानमय कोश का प्राकट्य है जो भगवत्-साक्षात्कार के लिये दर्पणवत् है। इसके अतिरिक्त मनुष्य शरीर कर्मयोनि भी है और अन्य केवल भोग योनियाँ हैं। मनुष्य देह देव दुर्लभ है, यथा :— दुर्लभो मानुषो देहो•••(भागवत) जेहि पायपंडित परमपद पावत पुरारि मुरारि को (विनय पत्रिका)। 'साधन धाम मोक्ष कर द्वारा' 'ज्ञान विराग भगति सुख देनी (रामायण)।

अतः जैसे पारस से स्पर्श द्वारा स्वर्ण हो जाने की योग्यता रखने के कारण लोहा चाँदी से श्रेष्ठ है उसी प्रकार मनुष्य देहरूपी लोहा अमृत पान करने वाले विषयासक्त देव शरीर रूपी चाँदी से श्रेष्ठ है क्योंकि सत्संग भजन रूपी पारस से मनुष्य रूपी लोहा ही मोक्ष रूपी सोना प्राप्त कर सकता है। जैसे मछली के लिये

तेल व घृत से जल श्रेष्ठ है उसी प्रकार जीव रूपी मछली के लिये तिर्यक् योनि रूपी तेल व देव योनि रूपी घृत से मनुष्य देहरूपी जल श्रेष्ठ है।

प्रश्न नं० २—जैसे दिन में सूर्य का दर्शन सब को होता है और जल में सब मछलियों को सुख की प्राप्ति हो जाती है उसी प्रकार मनुष्य शरीर में सब जीवों को भगवत् साक्षात्कार क्यों नहीं हो जाता ?

उत्तर—जैसे दिन में भी केवल नेत्र वालों को सूर्य दर्शन हो सकता है नेत्रहीन को नहीं। नेत्र वालों को भी बादल वाले दिन में सूर्य का दर्शन नहीं हो सकता। उसी प्रकार मनुष्य शरीर में भी मल विक्षेप आवरण से रहित ज्ञान नेत्र वालों को ही भगवत् साक्षात्कार होता है ज्ञान हीन मनुष्यों को भगवत् साक्षात्कार नहीं हो सकता। दर्पण में भी नेत्र वाले को ही मुख का दर्शन हो सकता है जबकि दर्पण निर्मल हो। यथा :—मुकुर मलिन अरु नैन विहीना, राम रूप देखहिं किमि दीना। अतः मनुष्य शरीर में विज्ञानमय कोशरूपी दर्पण प्राप्त होने पर भी मलविक्षेप आवरण दोषों से युक्त होने के कारण और ज्ञान रूपी नेत्र हीन होने से सच्चिदानन्द परमात्मा का अभेदरूप से साक्षात्कार नहीं होता। मछली को एक शीशी में बन्द करके समुद्र में डुबा दिया जाये परन्तु शीशी में बन्द होने के कारण सुखी नहीं हो सकती उसी प्रकार अहंता ममता रूपी शीशी में बन्द होने के कारण मनुष्य शरीर रूपी जल प्राप्त होने पर भी जीव भगवत्-साक्षात्कार रूप परमानन्द

प्राप्त नहीं कर पाता। यदि ज्ञान भक्ति वैराग्य सत्संग द्वारा अहंता ममता का नाश हो जाये तो जीव त्रिविध दुःखों से सदा के लिये मुक्त हो जाये।

प्रश्न नं० ३—सब मनुष्य परमात्मा की प्राप्ति का यत्न क्यों नहीं करते ?

उत्तर—परमात्मा की प्राप्ति का यत्न तो सभी करते हैं परन्तु सत्संग के अभाव के कारण मार्ग नहीं जानते, उलटे मार्ग पर जा रहे हैं। जैसे सभी प्यासे मृग पानी को चाहते हैं परन्तु जो नदी की ओर जा रहा है उसको जल प्राप्त हो जायगा और जो मरुभूमि में प्रतीति मात्र मृगजल की ओर जारहा है वह जल को प्राप्त नहीं कर सकता, उसको तो भटक भटक कर प्राण देना होगा। उसी प्रकार सभी प्राणी सुख चाहते हैं परन्तु जो सत्संग भजन द्वारा परमात्मा की ओर जा रहे हैं उनको सुख प्राप्त हो जाता है क्योंकि परमात्मा नित्य सुखरूप है और जो मृगजलवत् विषय सुख की ओर दौड़ रहे हैं वे बराबर चौरासी लक्ष योनियों में भटकते रहते हैं क्योंकि विषयों में सुख नहीं, सुखाभास होता है जैसे शीशा में मुख नहीं मुखाभास होता है। सुख और परमात्मा का एक ही अर्थ है जिसको प्राप्त करने के लिये सब यत्न करते हैं।

प्रश्न नं० ४—सत्संग किसे कहते हैं ?

उत्तर—निद्रा से आँख खुल जाने पर जैसे स्वप्न शब्द मात्र अर्थशून्य हो जाता है उसी प्रकार सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द

ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाने से जिसके ज्ञान रूपी नेत्र अज्ञान निद्रा से खुल गये हैं और जिसको समस्त दृश्य स्वप्न के समान शब्द मात्र अर्थ शून्य हो गया है और जिसने निज स्वरूप को पंचकोशातीत अद्वैत अखंड एकरस असंग व्यापक निर्विकल्प सच्चिदानन्दघन उसी प्रकार दृढ़ निश्चय कर लिया है जैसे अज्ञानी को देहों में दृढ़ अपरोक्ष भावना होती है। और जो प्रलय के दुःखों का भी स्वप्नवत् मनो मात्र होने से सूर्य में अन्धकार की भाँति निज स्वरूप में अत्यन्ताभाव देखता है। और जिसका अन्तःकरण क्षमा दया सन्तोष समता और उदारता का समुद्र है और बड़े से बड़ी हानि लाभ को स्वप्नवत् जानकर हर्षशोक से रहित निर्भय है और छायावत देह के मानापिमान से सुखी दुखी नहीं होता और शत्रु तथा पापियों का भी हित चाहता है और जो जन्ममरण को छाया व मृगजल और स्वप्न की भाँति जानता है वही सन्त है और उस पर ईश्वर के समान श्रद्धा विश्वासपूर्वक तन मन धन निछावर करके तीव्र जिज्ञासा से परमार्थ संबन्धी प्रश्न द्वारा उसके सदुपदेशों को सादर श्रवण करना संतसंग कहलाता है।

प्रश्न न० ५—सत्संग से क्या लाभ है।

उत्तर—मति कीरति गति भूति भलाई,
जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई
सो जानहु सत्संग प्रभाऊ,
लोकहु वेद न आनि उपाऊ।

ऐसा कोई लाभ नहीं है जो सत्संग से प्राप्त न हो सकता हो। अर्थात् धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों की प्राप्ति सत्संग से ही होती है। जो अर्थ काम सत्संग के बिना किसी को प्राप्त है वह धर्म और मोक्ष का विरोधी होने के कारण लाभ रूप नहीं है, हानि रूप है।

प्रश्न नं० ६—धर्म अर्थ काम मोक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर—विषय सुख के साधन अनुकूल पंच विषयों को अर्थ कहते हैं।

काम—अनुकूल विषयों की प्राप्ति होने पर मन एकाग्र हो जाता है। उस एकाग्र मन में सच्चिदानन्द अन्तरात्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है जैसे स्थिर जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है। उस छाया सुख के अनुभव को काम कहते हैं।

धर्म—मोक्ष के साधनों को और मोक्ष के अविरोधी भोग के साधनों को भी धर्म कहते हैं।

धर्म दो प्रकार का होता है। एक, विशेष और दूसरा सामान्य।

विशेष धर्म—वर्णाश्रमानुसार स्वकर्म को विशेष धर्म कहते हैं। जैसे नाटक में एक भाई रानी और दूसरा राजा बन जाये तो अपना अपना खेल अपने वेष के अनुसार ही करेंगे परन्तु अन्तर से परस्पर भाई भाई समझते रहेंगे। उसी प्रकार ईश्वर अन्श विवेकी जीव अपने वर्णाश्रम के अनुसार कर्म करते हैं परन्तु अन्तर से अभेद भावना होती है। जैसे खरबूज़ा ऊपर से पृथक् पृथक् जान

पड़ता है परन्तु अन्तर से एक होता है। इसी प्रकार से स्वकर्म पालन को विशेष धर्म कहते हैं।

आश्रम चार हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास।

ब्रह्मचारी का मुख्यधर्म—अष्ट मैथुनों का त्याग अर्थात् १—स्त्रियों का ध्यान करना। २—उनके रूप की प्रशंसा करना। ३—उनके साथ खेल खेलना। ४—उनको बार बार टकटकी बांध कर देखना। ५—उनसे एकान्त में बात करना। ६—उनकी प्राप्ति के उपाय का चिन्तन करना। ७—उनकी प्राप्ति के लिये पक्का निश्चय कर लेना। ८—उनके साथ भोग करना, इन अष्ट प्रकार के मैथुनों का त्याग करना तथा गुरु की आज्ञा पालन करना।

गृहस्थ का मुख्य धर्म—ममता से रहित कर्तव्य कर्म का पालन करना और अतिथि सत्कार करना।

वानप्रस्थ का मुख्य धर्म—एकान्त में शारीरिक, वाचिक तथा मानसिक तप करना।

संन्यासी का मुख्य धर्म-ज्ञान, वैराग्य तथा संग्रह का त्याग।

वर्ण भी चार हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र।

ब्राह्मण का सहज धर्म—वेदों को पढ़ना व पढ़ाना, यज्ञ करना व कराना तथा आध्यात्मिक विद्या का तत्परता से शम दम सन्तोष पूर्वक अभ्यास करते रहना।

क्षत्रिय का सहज धर्म—नीतज्ञ होना, दान करना, युद्ध में निर्भयता तथा धर्म की रक्षा करना।

वैश्य का सहज धर्म—सत्यता पूर्वक व्यापार, खेती और गो-रक्षा करना।

शूद्र का सहज धर्म—शरीर मन वाणी से सेवा करना।

सामान्य धर्म—सामान्य धर्म के दस लक्षण और चार चरण होते हैं।

धैर्य, क्षमा, मन को वश में रखना, चोरी न करना, बाहर भीतर की पवित्रता, इन्द्रियों का निग्रह, सद्बुद्धि, विद्या, सत्य बोलना तथा क्रोध न करना ये धर्म के दस लक्षण हैं।

सत्य, दया, तप और दान ये चार धर्म के चरण हैं।

कलियुग ने धर्म के तीन चरणों को तोड़ दिया है केवल एक चरण दान शेष रह गया है। और उस शेष बचे हुये चरण की भी वही रक्षा कर सकता है जो व्यक्ति भगवन्नाम का अभ्यासी है। भगवन्नाम और दान द्वारा धर्म के शेष तीन चरण और दस लक्षण भी निर्विघ्न प्राप्त हो सकते हैं।

श्रद्धा और शक्ति दान के दो हेतु हैं। सात्विक, राजस तथा तामस तीन दान के भेद हैं दाता, पवित्रता, धर्मपूर्वक देय वस्तु, देश, काल तथा पात्र ये छे दान के अङ्ग हैं। इस लोक का तथा परलोक का भोग दो प्रकार का दान का फल है।

१—जिस दान को देकर पछितावे। २—जो दान असत पात्रों को दिया गया है। ३—जो दान अश्रद्धा से दिया गया है ये तीन दान के नाश हैं।

जो निष्कामदान करने वाला देशानुकूल, समयानुकूल और पात्रानुकूल अपनी शक्ति के अनुसार दान करता है अर्थात्, दान देने के पश्चात् पश्चात्ताप नहीं करता वल्कि हर्ष को प्राप्त होता है उसको अवश्य भगवत्-साक्षात्कार हो जाता है। इसपर एक दृष्टान्त है।

एक भगवन्नाम प्रेमी दानी ने एक दान गृह बनवाया और उसमें चारों ओर दान पाने वालों की सुविधा के लिये चार द्वार बनवा दिये।

वह दानी उन चारों द्वारों से बराबर श्रद्धा भक्ति से दान दिया करता था और दान देते समय नीचे देखने लगता था उसके दान से प्रसन्न होकर सच्चिदानन्द विष्णु भगवान् एक साधु के वेष में एक द्वार पर भिक्षा माँगने आये। वह दानी पृथ्वी की ओर ताकता हुआ भिक्षा देने लगा। साधु वेष धारी भगवान् बोले :—

दो०—अहो चतुर सीखे कहाँ, चतुराई की देन।
चारो दरते देत हो, नीचे करिके नैन ॥

उस दानी ने उत्तर दिया—

दो०—देने वाला और है=देत रहे दिन रैन।
लोग भरम मेरो करैं=ताते नीचे नैन ॥

इस उत्तर को सुन कर भगवान् का हृदय द्रवीभूत हो गया और उन्होंने उस दानी भक्त को असली रूप में दर्शन दिया। और अनन्य भक्ति का वर देकर अन्तर्धान हो गये।

दो०—प्रगट चार पद धर्म के=कलिमहँ एक प्रधान।
जेन केन विधि दीन्हें= दान करइ कल्यान॥

पुरुष मात्र का धर्म है एकस्त्रीव्रत होना अथवा ब्रह्मचर्य व्रत रखना उसी प्रकार स्त्री मात्र का धर्म में पतिव्रता होना अथवा ब्रह्मचर्य व्रत रखना।

मोक्ष—दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान द्वारा अज्ञान सहित प्रपंच की अत्यन्त निवृत्ति पूर्वक निर्द्वैत परमानन्दघन ब्रह्मरूप से शेष रहना मोक्ष कहलाता है।

प्रश्न नं० ७—ब्रह्मज्ञान व अज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर—जैसे निद्रा जन्य स्वप्न देह में अहंता और स्वप्न दृश्य में ममता जाग्रत का ज्ञान होते ही नष्ट हो जाती है उसी प्रकार सर्वात्मा ब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान होते ही परिच्छिन्न अहं व इदं की अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है। अतः जिसके अज्ञान से द्रष्टा दर्शन दृश्य रूप त्रिपुटीरज्जु में सर्प की भाँति नित्य निवृत्त होने पर भी विद्यमान सी भासती है वही ब्रह्म है और उस ब्रह्म को अपना स्वरूप उसी प्रकार जान लेना, जैसे राधा-पुत्र कर्ण ने अपने को कुन्ती पुत्र जान लिया था, ब्रह्मज्ञान कहलाता है। प्रथम में जैसे कर्ण अपने को कुन्ती पुत्र नहीं जानता था और संग दोष से अपने को राधा-पुत्र जानने लगा था। उसी प्रकार जीव अपने वास्तविक स्वरूप ब्रह्म को अनादि काल से भूला हुआ है जिसको मूल अज्ञान कहते हैं और तीनों देहों व तीनों अवस्थाओं में अहं इदं भाव को विपरीत ज्ञान कहते हैं। मूल

अज्ञान और विपरीत ज्ञान दोनों अज्ञान के वाचक हैं। अज्ञान के संबन्ध में स्कन्द पुराण के केदार खंड में एक कथा भली प्रकार लिखी हुई है। वह कथा इस प्रकार है कि एक ऋषि ने तप करके परमेश्वर से वर माँगा कि, हे भगवान्! अज्ञान को मैं देखना चाहता हूँ। भगवान् ने उत्तर दिया कि जो दृश्य पदार्थ है वह सब अज्ञान का कार्य है। ऋषि ने कहा कि मैं उस अज्ञान को देखना चाहता हूँ जिसको शास्त्रों में अनिर्वचनीय अविचार से सिद्ध लक्षण शून्य प्रपंच का कारण बतलाया गया है।

भगवान् ने वर दे दिया कि देखोगे। एक दिन ऋषिजी ने हृषीकेश में गंगा के किनारे आसन आदि पूजा की सामग्री रखकर गंगा में डुबकी लगाई। इसी बीच में वह अपने को ऋषि मानना भूल गये और किसी धीवर की लड़की होगये। उसका विवाह हो गया। ४० वर्ष की आयु में कई लड़के व लड़की उसके हो गये। एक दिन वह स्त्री घट भरने के लिये गंगा के किनारे पर आई और घट को किनारे पर रख कर जहाँ ऋषि ने डुबकी लगाई थी वहीं पर उसने भी डुबकी लगाई। जब उसने ऊपर को शिर निकाला तो उसका शरीर ऋषिका शरीर होगया। गंगा के तट पर उसको घट भी दिखाई पड़ता है और पूजा की सामग्री भी रक्खी हुई दिखाई पड़ रही है। उसको यह भी स्मरण आ रहा है कि मैं अमुक ऋषि हूँ और नित्य गंगा स्नान करने को आता हूँ और आज अभी गंगा में स्नान करते कुछ क्षण हुये हैं, और यह भी स्मरण आ रहा है कि मैं अमुक धीवर की स्त्री हूँ और यहाँ जल भरने

को आई हूँ और मेरे इतने लड़के व लड़की हैं। ऋषि बहुत बड़े भ्रम में पड़ गया और स्पष्ट निश्चय नहीं कर सकता था कि मैं ऋषि हूँ या स्त्री हूँ। उसी समय उस स्त्री का पति लड़के को गोद में लेकर वहाँ आ गया और ऋषि जी से पूछा कि, महाराज! मेरी स्त्री यहाँ जल भरने आई थी। उसका घट वह रक्खा है। क्या आपने उसको देखा है, क्या वह डूब तो नहीं गई? यह सुनकर अपने बालक को पति की गोद में देख कर ऋषि जी मोहयुक्त होकर रोकर कहने लगे कि मैं ही तुम्हारी स्त्री हूँ, गंगा में स्नान करने से मेरा शरीर ऋषि का हो गया है। इसी बीच में परमेश्वर की माया दूर हो गई। न वहाँ घड़ा रहा और न बालक को गोद में लिये हुये पति का पता रहा। ऋषि जी ने ४० वर्ष की गृहस्थी का अनुभव एक पल में प्रत्यक्ष किया। ऋषि जी जान गये कि मैंने लक्षण शून्य अविचार से सिद्ध भ्रममात्र प्रपंच के कारण अज्ञान को देखना चाहा था वही देखा। अब उनका स्त्री का अभिमान जाता रहा। तत्पश्चात् उन्होंने ऋषि का भी अभिमान छोड़ दिया, यह सोच कर कि जैसे ४० वर्ष की स्त्री का देह कल्पित भ्रममात्र प्रतीत हुआ उसी प्रकार ऋषि का देह भी भ्रममात्र अविचार से प्रतीत हो रहा है। वास्तविक स्वरूप के विचार का अभाव केवल जीव में ही नहीं है बल्कि सूर्य में दिन के अभाव की भाँति निर्द्वैत निर्विकल्प ब्रह्म में भी विचार का अभाव है। यही विचाराभाव रूप अग्रहण आकाश में नीलमावत् द्रष्टा दर्शन दृश्य रूप अन्यथा ग्रहण का कारण है। अन्यथा ग्रहण दो प्रकार का होता

है—एक समसत्ता वाला, जैसे दूध का अन्यथा ग्रहण दही है इसमें दूध और दही की सम सत्ता है। समसत्ता वाले अन्यथा ग्रहण में उपादान कारण को विकृत होना पड़ता है। दूसरा विषम सत्ता वाला अन्यथा ग्रहण, जैसे रज्जु में सर्प की प्रतीति। इसमें रज्जु और सर्प की विषम सत्ता है। रज्जु व्यावहारिक है और सर्प प्रातिभासिक है। इस प्रकार के विषम सत्ता वाले भ्रममात्र अन्यथा ग्रहण में उपादान कारण को विकृत नहीं होना पड़ता है वह एकरस परिणाम हीन निर्विकार रहता है।

सर्वाधिष्ठान निर्द्वैत परमानन्दघन सामान्य चेतनब्रह्म का द्रष्टा दर्शन दृश्य रूप प्रपंच विषमसत्ता वाला रज्जु सर्पवत अन्यथा ग्रहण है। इस कारण प्रपंच की उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय भासने पर भी ब्रह्म से भिन्न प्रपंच तीनों काल में उत्पन्न नहीं हुआ। इसीसे वेदान्त सिद्धान्त में पारमार्थिक दृष्टि से अजात वाद और व्यावहारिक दृष्टि से विवर्तवाद मान्य है। अतः स्वस्वरूप निर्विकल्प निर्विकार ब्रह्म से भिन्न कुछ उत्पन्न ही नहीं हुआ ऐसा जानना ज्ञान है और ब्रह्म से भिन्न अहं वइदं को सत्य जानना अज्ञान है। श्रवण मनन निदिध्यासन ज्ञान का हेतु है, पंचकोशों से आत्मा को प्रथक जानना ज्ञान का स्वरूप है, देहाभिमान न रहना फल है और देहात्मज्ञानवत् आत्माभिमान हो जाना ज्ञान की अवधि है।

प्रश्न नं ८—सहज निर्विकल्प ब्रह्म में प्रपंच का विकल्प कैसे सम्भव है क्योंकि अपने स्वभाव को कोई नहीं छोड़ता।

उत्तर—जैसे सूर्य में अन्धकार का होना असम्भव है परन्तु नेत्र दोष से कल्पित अन्धकार सूर्य में देखा जा सकता है। उसी प्रकार सहज निर्विकल्प ब्रह्म में प्रपंच का विकल्प होना असम्भव है परन्तु विषमसत्ता वाले कल्पित विकल्प से सहज निर्विकल्प ब्रह्म का कोई विरोध नहीं है जैसे जाग्रत के सूर्य का स्वप्न की रात्रि से कोई विरोध नहीं। निर्विकल्प चेतन में आकाश में नीलिमा अथवा गम्भीर जल में श्यामता की भाँति कल्पित विकल्प रूप अहंसंवेदन स्वाभाविक है। परन्तु जैसे आकाश में नीलमा व समुद्र में श्यामता कुछ नहीं है, केवल भासती है उसी प्रकार परिच्छिन्न अहं त्वं ब्रह्म में आभास मात्र हैं, वास्तवं में कुछ नहीं हैं। जब तक अहं में सत्ता है तब तक भ्रममात्र संसार में भी सत्ता भासती है और जब अहं भाव वास्तविक स्वरूप के ज्ञान से तुच्छ हो जाता है तब संसार भी जागने पर स्वप्न की भाँति कुछ नहीं रहता।

प्रश्न नं० ९—स्वस्वरूप ब्रह्म से भिन्न सर्व मिथ्या है इसमें क्या प्रमाण है ?

उत्तर—मुख्यतः इसमें वेदान्त, वाक्यरूप शब्द प्रमाण है। यथा :—"अयमात्मा ब्रह्म" "नेह नानास्ति किञ्चन" इन वेदान्त-वाक्यरूप शब्द-प्रमाण से "अहं ब्रह्मास्मि" नेह नानास्ति किञ्चन" ऐसी प्रत्यक्ष प्रमा होती है। तब विद्वान् का अनुभव ही प्रत्यक्ष प्रमाण उसी प्रकार हो जाता है जैसे श्रोत्रज, त्वाच, चाक्षुष, रासन तथा घ्राणज प्रत्यक्ष प्रमा के लिये पंच ज्ञानेन्द्रियाँ प्रत्यक्ष प्रमाण

हैं। यदि मलिन अन्तःकरण होने के कारण वेदान्तवाक्यरूप शब्द प्रमाण से अपरोक्ष प्रमा न हो तो अनुमान प्रमाण, उपमान प्रमाण, अर्थापत्ति प्रमाण तथा अनुपलब्धि प्रमाण द्वारा मनन कर लेना चाहिये।

अनुमान प्रमाण से यह विचार करना चाहिये कि जैसे जहाँ धुआँ है वहाँ अग्नि अवश्य है, उसी प्रकार जो चेतन है उसका चेतनब्रह्म से अवश्य अभेद होगा। चूँकि जीव चेतन है इससे चेतन जीव का चेतनब्रह्म से व्यावहारिक भेद प्रत्यक्ष होने पर भी पारमार्थिक अभेद अवश्य होगा। क्योंकि उपाधि के बिना आकाशवत् चेतन में अनेकता नहीं हो सकती। श्रुति-स्मृति में सकल प्रपंच की निवृत्ति ज्ञान से प्रतिपादन की गई है। यदि प्रपंच सत्य होता तो ज्ञान से निवृत्त नहीं हो सकता था। जैसे रज्जु के ज्ञान से सर्प की निवृत्ति इस कारण हो जाती है कि रज्जु में सर्प मिथ्या है। उसी प्रकार ब्रह्म के ज्ञान मात्र से प्रपंच की निवृत्ति हो जाने के कारण प्रपंच रज्जु सर्पवत् अवश्य मिथ्या है, इस प्रकार अनुमान प्रमाण से मनन करना चाहिये।

सादृश्य ज्ञान अथवा वैधर्म्य ज्ञान को उपमान कहते हैं। आकाश के सदृश्य आत्मा असंग व्यापक है। इस प्रकार उपमान प्रमाण के मनन द्वारा आत्मा को असंग व्यापक निश्चय करन चाहिये। जिस उत्तम जिज्ञासु को आकाशादिक सकल प्रपंच स्वप्नवत् भ्रम मात्र निश्चय हो गया है जिसके कारण वह आत्मा में आकाश का किंचित् सादृश्य नहीं मानता उस उत्तम जिज्ञासु को

वैधर्म्य ज्ञान को उपमान प्रमाण मानकर मनन करना चाहिये। विरुद्ध धर्म को वैधर्म्य कहते हैं और विरुद्ध धर्मवाले को विधर्मी कहते हैं। अनित्य, अशुचि दुःख रूप देहादिक से विधर्मी नित्य शुद्ध आनन्द रूप आत्मा है इस प्रकार से भी उपमान प्रमाण द्वारा मनन करना चाहिये। अर्थ की कल्पना जिससे होवे उसको अर्थापत्ति प्रमाण कहते हैं। जैसे दिन को भोजन न करने वाले पुरुष की स्थूलता का ज्ञान अर्थापत्ति प्रमाण इस बात का है कि वह रात्रि को अवश्य भोजन करता होगा। उसी प्रकार सुषुप्ति और समाधि में मन के विलय हो जाने से अनात्म प्रपंच का अभाव हो जाता है जिससे यह कल्पना होती है कि सकल अनात्म प्रपंच मानस है। यदि प्रपंच मनोमात्र न होता तो मन के विलय होने से प्रपंच का अभाव न होता। अतः मन के विलय से सकल द्वैत के विलय का ज्ञान अर्थापत्ति प्रमाण है और द्वैत मनोमात्र है ऐसा ज्ञान अर्थापत्ति प्रमा है।

अभाव की प्रमा के करण को अनुपलब्धि प्रमाण कहते हैं। जैसे जाग्रत् में स्वप्न की अनुपलब्धि स्वप्न के अभाव होने में प्रमाण है उसी प्रकार स्वप्न में जाग्रत् की अनुपलब्धि जाग्रत् के अभाव होने में प्रमाण है। उसी प्रकार सुषुप्ति में जाग्रत् व स्वप्न दोनों की अनुपलब्धि जाग्रत् तथा स्वप्न के अभाव होने में प्रमाण है। उसी प्रकार तुरिय में जाग्रत् व स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं की अनुपलब्धि यह सिद्ध करती है कि परमार्थ स्वरूप तुरिय में तीनों अवस्थाओं का सूर्य में रात्रि की भाँति अत्यन्ताभाव

है। अनुपलब्धि ज्ञान में दो हेतु हो सकते हैं, या तो दृश्य का अभाव हो या द्रष्टा की दृष्टि में दोष हो। चूँकि द्रष्टा की दृष्टि नित्य है इसलिये सुषुप्ति और तुरिय में दृश्य की अनुपलब्धि का ज्ञान यह सिद्ध करता है कि दृश्य का अभाव है। यदि दृश्य सत्य होता तो द्रष्टा की दृष्टि नित्य होने के कारण सुषुप्ति और तुरिय में भी दृश्य का ज्ञान होना चाहिये था। अतः "नेह नानास्ति किंचन" इत्यादिक श्रुतिवाक्यों की अनुपलब्धि प्रमाण से पुष्टि होती है।

प्रश्न नं० १०--बद्ध अल्पज्ञ जीव की नित्यमुक्त सर्वज्ञ ईश्वर से एकता कैसे होगी ?

उत्तर—यही प्रश्न एक महात्मा से एक मुमुक्षु ने किया। महात्मा ने उसको गंगाजल लाने के लिये अपना कमंडलु दिया और कहा कि इसमें गंगाजल भर लाओ, तब उत्तर दूँगा। मुमुक्षु कमंडलु में गंगाजल भर लाया। महात्मा ने मुमुक्षु से कहा कि इस कमंडलु जल को गंगाजल कैसे मान लूँ। गंगाजल में नावें चलती हैं और उसमें हाथी डूब जाते हैं और गन्दी नालियों के मिलने से भी वह ज्यों का त्यों पवित्र रहता है। परन्तु इस कमंडलु जल में एक भी नाव नहीं चलती है और इसमें पैर भी नहीं डूब सकता और इसमें थूक देने से यह अपवित्र हो जायेगा। फिर यह कमंडलु जल गंगाजल कैसे हो सकता है ? मुमुक्षु ने कहा कि, महाराज ! ईश्वर को साक्षी करके मैं सत्य कहता हूँ कि यह कमंडलु का जल गंगाजल ही है। कमंडलु के कारण ऐसा भेद मालूम

पड़ता है। महात्मा ने कहा कि इसी प्रकार स्थूल सूक्ष्म कारण देहों के कारण जीव ईश्वर में भेद मालूम पड़ता है वास्तव में आकाशवत् चेतन एक है, उपाधियों के कारण नाना इव भासता है। जैसे अनेक जलपूर्ण घटों के कारण एक सूर्य अनेक भासता है और निद्रा के कारण एक स्वप्न-द्रष्टा स्वप्न में नाना होकर भासता है उसी प्रकार माया और अविद्या के कारण एक ही चेतन जीव और ईश्वर होकर भासता है। जीव, ईश्वर और माया के स्वरूप का विस्तार से वर्णन "अष्टादशश्लोकी गीतामृतवर्षिणी" नामक पुस्तक में किया है' इसलिये यहाँ विस्तार से नहीं लिखा। इस प्रकार का मोक्षदायक ज्ञान केवल वैराग्यवान् को ही होता है।

प्रश्न नं० ११—वैराग्य का साधन क्या है, उसका स्वरूप व फल क्या है और उसकी अवधि क्या है?

उत्तर—वैराग्य का साधन है विषयों में बारम्बार दोष दर्शन करना। विषयों में भी दोष दर्शन वही करेगा जिसको अशुचि क्षणभंगुर अनात्मा दुःख-रूप शरीर से छुटकारा पाने की सदा चिन्ता रहने लगी हो।

भक्षण के पहले अन्न अनात्मा स्पष्ट है फिर भक्षण कर लेने पर वही अन्न शरीर रूप में परिणत हो जाने से आत्मा कैसे हो जावेगा? जब सत्संग द्वारा ऐसा विवेक होता है कि अन्न का परिणाम मल जैसा अशुचि अनात्मा है उसी प्रकार अस्थि-माँस मय देह भी अन्न का परिणाम होने से अशुचि अनात्मा है तब वैराग्य होता है। परन्तु मूर्ख जैसे जब तक मल को त्याग नहीं

करता तब तक उसको अपना स्वरूप जानता है और त्याग करने पर मल को अपने से पृथक् अशुचि अनात्मा जानता है उसी प्रकार मूर्ख जब तक देह को धारण किये रहता है तब तक देह को अपना स्वरूप मान कर अभिमान करता है परन्तु जब देह का त्याग करता है और उस मृत देह पर कुत्ते आक्रमण करते हैं और ज़बरदस्त कुत्ता शिर पर पैर रखकर अभिमान पूर्वक दूसरे कुत्तों को झिड़कता है तब यह मूर्ख उस मृत देह का अभिमान छोड़ देता है। यदि देहत्याग के पहले ही अभिमान छोड़ देता तो चौरासी लक्ष योनियों से मुक्त हो जाता। देहाभिमानी मूर्ख कौओं और नाली के कीड़ों से भी गये गुज़रे हैं क्योंकि कौआ मल से और नाली के कीट नाली के कीचड़ से राग अवश्य करते हैं, परन्तु कौआ मल को और कीट नाली को अपना स्वरूप समझ कर अभिमान नहीं करते परन्तु मूर्ख मनुष्य मल और नाली से भी बदतर देह को अपना स्वरूप मान कर अभिमान करते हैं। देह में अहंभाव के कारण ही दुःख रूप देह का भार जान नहीं पड़ता, रूई की तरह हल्का मालूम पड़ता है। देह त्याग करने पर अहंभाव देह से निकल जाता है तब चार आदमी कठिनाई से उठा पाते हैं। अतः देह अनित्य जड़ दुःखरूप अनात्मा है और 'मैं इस अशुचि देह से विपरीत स्वभाव वाला हूँ' ऐसा विवेक वैराग्य का हेतु है। विषयों के त्यागने का निश्चय वैराग्य का स्वरूप है विषयों में ग्लानि हो जाना वैराग्य का फल है और विषयों को वमनवत् त्याग कर देना वैराग्य की अवधि है।

यथा :—रमा विलास राम अनुरागी,
तजत वमन इव नर बड़भागी।

प्रश्न नं० १२—ज्ञान का साधन वैराग्य, वैराग्य का साधन विवेक और विवेक का साधन सत्संग कहा गया है, परन्तु सत्संग का साधन क्या है ?

उत्तर:—पुण्य पुंज बिनु मिलहिं न सन्ता,
सत्संगति संसृत कर अन्ता।

इस पर एक कथा है कि एक राजा की लड़की का अनेक बहुमूल्य लालों से गुथा हुआ हार खो गया। उस कुमारी ने अपने पिता से कह दिया कि जो इस हारको खोजकर लायेगा उसी के साथ मैं अपनी शादी करूँगी। खोज करते करते वही हार एक नदी के अन्दर दिखाई पड़ा परन्तु गोता लगाने पर किसी को भी नहीं मिलता था। पंडितों ने राजा को सलाह दी कि आप उस नदी के किनारे जप यज्ञ दान पाठ कराइये, हार अवश्य मिलेगा। राजा एक वर्ष तक उस नदी के तट पर जप यज्ञ दान कथा कीर्तन कराता रहा परन्तु हार नदी में केवल दिखाई पड़ता था, मिला नहीं। राजा ने क्रोध में आज्ञा दी कि कल यहाँ के सब पंडितों को फाँसी दे दी जावेगी यदि कल तक हार न मिला। दूसरे दिन प्रातःकाल एक परम वीतराग परमहंस सन्त वहाँ से होकर निकला। राजा ने उस सन्त की श्रद्धा प्रेम सहित पूजा की और हार न मिलने की कथा कह सुनाई बसन्त ने राजा को नदी तट पर ले जाकर एक दूरबीन दी और कहा कि प्रतिबिम्बित हार की

सीध में ऊपर पर्वत के शिखर पर वृक्ष को देखो। दूरबीन के द्वारा राजा को ज्ञात हो गया कि ऊपर शिखर पर वृक्ष की एक शाखा पर वही हार लटक रहा है और उसका प्रतिबिम्ब नदी में पड़ रहा है। नदी में सच्चा हार नहीं है, केवल हार की छाया है।

राजा ने वृक्ष से हार उतरवा लिया और अत्यन्त प्रसन्न हुआ। पुनः उसने सन्त से पूछा कि पंडितों को क्या दण्ड देना चाहिये क्योंकि इन्होंने लगातार एक वर्ष व्यर्थ में नदी से हार मिलने की आशा में जप तप व्रत यज्ञ दान पाठ कथा कीर्तन करवाया। सन्त ने उत्तर दिया कि उन पंडितों की बहुत प्रकार से पूजा सेवा करो क्योंकि उनके बताये हुये जपादि पुण्य के फल से ही मेरा दर्शन हुआ और मेरे दर्शन के फल से दूरबीन द्वारा सच्चे हार का ज्ञान हुआ। तात्पर्य यह निकला कि परमानन्द रूप हार की प्राप्ति ज्ञान रूपी दूरबीन से होती है क्योंकि संसार रूपी नदी में सच्चा आनन्द नहीं है, केवल आनन्द की छाया है। ज्ञान रूपी दूरबीन सत्संग से प्राप्त होती है और सत्संग की प्राप्ति निष्काम धर्मपालन का फल है। अतः सत्संग के साधन सत्कर्म हैं।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

श्री वेदान्ती जी लिखित पुस्तकों की सूची

१—अष्टादश श्लोकी गीतामृतवर्षिणी	(छप चुकी है)	१)
२—धर्म प्रश्नोत्तरी	(,,)	।~)
३—दशनामापराध ज्ञानमाला	(~~छपने को है~~ ,,)	॥)
४—स्त्री-धर्म सर्वस्व सार	(,,)	॥)

मिलने का पता :—

मुखिया भक्त बालचन्द जी सिन्धी

विक्टोरिया पार्क,

बनारस ।

रामधारा (घर का डाक्टर)—यह एक ही दवा कई रोगों में जैसे दस्त, वमन, जुकाम, सर-पेट-दाँत और भी हर प्रकार के दर्द, किसी पशु या जानवर का काटा अथवा हैजा जैसे और रोगों में लाभप्रद है।

मैंने स्वयं अनुभव करके देखा है कि उक्त रामधारा की सभी दवाइयों से शीघ्र आशातीत निश्चित लाभ होता है। मेरे दाँत व शिर का भीषण दर्द रामधारा के लगाते-लगाते दस मिनट में क़तई ग़ायब हो गया जो अनेक दवाइयों से टस से मस नहीं हुआ। इन दवाइयों को जो सेवन करेगा उसको निश्चित लाभ होने की आशा है क्योंकि इनमें ठगी, चालाकी बिल्कुल नहीं है। —लेखक